

शिक्षा के समाजशास्त्रीय सिद्धांत-VII

पियेर बोर्डियु

अमन मदान

अनुवाद : जनित जैन

पियेर बोर्डियु (1930-2002) ने फ्रांस के एक छोटे से कस्बे में एक डाक कर्मचारी के घर जन्म लिया। पेरिस जैसे एक भद्र व ग्लैमर से भरपूर शहर में जब वे नृत्यविज्ञान का अध्ययन करने गए तो उन्हें हर तरह के उस अपमान और दुत्कार का सामना करना पड़ा जो निम्न वर्ग और ग्रामीण इलाकों से आने वाले लोग दुनिया भर में झलते रहे हैं। सुविधासम्पन्न परिवेश से आने वाले लोगों द्वारा अन्य लोगों को किस तरह खदेड़ा जाता है और अपने दायरे में प्रवेश पाने से रोका जाता है, इस पर बोर्डियु की गहरी अंतर्दृष्टि ही थी कि शिक्षा में उनके काम को बाद में लोकप्रियता हासिल हुई। स्कूलों और कॉलेजों में ताकतवर वर्ग की संस्कृति के लिए एक खास जगह थी और इस संस्कृति से नहीं होने का मतलब था एक अघोषित हिंसा का शिकार बनना जो छात्रों के सीखने और उनकी उपलब्धियों पर प्रहार करती थी। यही वह चिंता थी जो जीवन भर उनके काम में झलकती रही।

बोर्डियु ने यह समझने में मदद की कि किस तरह सामाजिक असमानता का पुनरुत्पादन तब भी हो रहा होता है जबकि बच्चे ऐसे स्कूलों में प्रवेश पाते हैं जो कि अच्छे स्कूल माने जाते हैं। उनका अधिकतर काम फ्रांस में था जहां उनके अपने दौर में भी एक व्यापक सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था मौजूद थी, जिसे भारत अब जाकर विकसित कर पाया है। उन्होंने तर्क दिया कि हालांकि ऐसा प्रतीत हो सकता है कि शिक्षा सभी के लिए उपलब्ध है फिर भी सिर्फ कुछ खास वर्गों से आने वाले बच्चे ही होते हैं जो आगे बढ़ते हैं और सबसे बेहतरीन महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में दाखिल होते हुए दिखाई देते हैं। यह समझने के लिए बोर्डियु ने एक सैद्धांतिक ढांचा प्रस्तुत किया। हालांकि भारत में संस्थानों का स्वरूप उससे काफी भिन्न है जो कि फ्रांस में है और ना ही हमारे यहां ऐसा कोई संरचनागत ढांचा या मदद मौजूद है जो वहां गरीब बच्चों को प्राप्त होती है फिर भी उनका काम हमारे उन सूक्ष्म तरीकों को समझने में प्रासंगिक है जिनके माध्यम से गहरी सामाजिक असमानताओं को अभिव्यक्त किया जाता है। यहां यह संकेत कर देना बेहतर होगा कि केवल अच्छे स्कूलों तक पहुंच को बढ़ा देना पर्याप्त नहीं है, शायद हमें इससे काफी आगे सोचना होगा।

सांस्कृतिक पूंजी

जैसा कि हमने देखा है कि पारम्परिक मार्क्सवादी शिक्षा को आर्थिक पूंजी के अंतर के नजरिए से देखते थे। वे मानते थे कि स्कूल की पाठ्यचर्या और स्कूल की संस्कृति क्या आकार लेगी, ये उन लोगों से तय होता है जिनके पास अधिक संपत्ति है, विशेष तौर पर बड़े पूंजीपतियों द्वारा चलाए जा रहे उद्योगों की जरूरत से। बोर्डियु ने इस दायरे को विस्तृत किया और इसमें कई विभिन्न किस्म की पूंजी को शामिल किया- खास तौर पर सामाजिक व सांस्कृतिक पूंजी- जिसका होना या ना होना स्कूल और कॉलेज में होने वाले

जीवनानुभवों को आकार देता है। उन्होंने कहा कि आर्थिक पूंजी सीधे तौर पर केवल कुछ खास तरह के सामाजिक पहलुओं या सामाजिक क्षेत्रों पर असर डालती है। अन्य सामाजिक क्षेत्रों में जैसे संगीत, खेल या गणित में चीजें थोड़ी भिन्न हैं। एक बच्चा जिसके पास बहुत सम्पत्ती नहीं है लेकिन उसके माता-पिता पढ़ना-लिखना जानते हैं तो उस बच्चे के पास कक्षा में उस बच्चे की तुलना में अधिक पूंजी मौजूद है जिसके माता-पिता पढ़े-लिखे नहीं हैं। शिक्षा में सामाजिक असमानता को समझने की कुंजी इसी में निहित है कि पूंजी सिर्फ पैसा नहीं होता बल्कि यह किसी भी तरह का जमा श्रम हो सकता है। यह मानवीय श्रम से ही संभव हुआ कि मूल्यवान वस्तुओं, सेवाओं या कसी भी तरह की गुणात्मकता का सृजन हुआ। क्योंकि जमा की गई मानवीय श्रम आधारित पूंजी पूर्व में किए गए कई कामों और प्रयासों का जोड़ थी। जो लोग संगीत जैसे किसी क्षेत्र में गए और गायन के नियमित अभ्यास में अपनी ऊर्जा लगाई, उन्होंने अपने श्रम के माध्यम से एक खास किस्म की पूंजी का संचय किया। वर्षों बाद यही नियमित अभ्यास उनके लिए महत्वपूर्ण संसाधन बन गए और उनके मस्तिष्क व शरीर में उन हजारों घंटों के दृढ़ परिश्रम से अर्जित की गई काबिलियत जमा हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने उनकी तुलना में बेहतर प्रदर्शन किया जिन्होंने संगीत के सामाजिक क्षेत्र में बाद में कदम रखा और जिनके पास संगीत की संचित काबिलियत तुलनात्मक रूप से कम थी।

बोर्डियु कहते थे कि अलग-अलग क्षेत्रों के अनुरूप अलग-अलग तरह की पूंजी होती है। संगीतज्ञ, जिनकी हम बात कर रहे हैं, उनके पास एक तरह की सांस्कृतिक पूंजी थी जिसने उन्हें उनके खास क्षेत्र में उत्कृष्टता प्रदान की, ठीक उसी तरह, जिस तरह जिनके पास आर्थिक पूंजी थी वे बाजार को प्रभावित व नियंत्रित कर सकते थे जो कि उनका अपना खास क्षेत्र था।

बोर्डियु ने इस संदर्भ में एक बेहद रोचक अंतदृष्टि प्रदान की कि किस तरह अधिक पूंजी आपको किसी खास क्षेत्र को प्रभावित या नियंत्रित करने की इजाजत देती है। वे कहते थे कि जब लोग किसी क्षेत्र में सबसे पहले दाखिल हो जाते हैं, उदाहरण के लिए जिहोने पहले बांसुरी बजाना शुरू कर दिया तो उन्हें कई तरह के फायदे होते हैं। एक, वे दूसरों की तुलना में कहीं ज्यादा अनुभव या पूंजी जमा कर लेते हैं लेकिन एक बिलकुल अलग और कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण फायदा यह है कि वे ही परिभाषित करते हैं कि अच्छा संगीत क्या है। ये कुछ वैसा ही कि खेल के मैदान में जिस भी खिलाड़ी ने सबसे पहले अपनी जगह ले ली तो आगे का खेल कैसे चलेगा ये इसी से निर्धारित होगा। यदि एक टीम के खिलाड़ी मैदान में सभी महात्वपूर्ण मोर्चों पर कब्जा जमा लेते हैं तो इसके बाद विरोधी टीम के खिलाड़ियों के पास हमेशा कमजोर मोर्चों पर खड़े रहने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता। अब संगीत के उदाहरण पर वापस आते हैं। जब एक खास किस्म की ध्वनि 'संगीत' के रूप में स्थापित हो गई तो इसने हमारे दिमागों में 'अच्छे संगीत' की एक छवि निर्मित कर दी। और जब नए प्रवेशार्थियों ने किसी संगीत का सृजन किया तो उसे अपनी जगह बनाने के लिए इस स्थापित छवि के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा। बोर्डियु जो इशारा कर रहे थे, वह यह था कि जिसे हम शास्त्रीय संगीत के रूप में स्वीकारते रहे व जिसकी एक परिचित और मोहक ध्वनि थी, जरूरी नहीं कि वह दरअसल संगीत के अन्य स्वरूपों से बेहतर ही हो। बात सिर्फ इतनी है कि हम पहले से अच्छे संगीत के बारे में एक मान्यता रखते थे और फिर इसी से आगे चलकर अच्छे संगीत को परिभाषित कर दिया गया। सांस्कृतिक पूंजी हमेशा ही कोई बेहतर चीज हो यह जरूरी नहीं होता। यह बस इतना है कि किसी चीज ने हमारे ध्यान पर कब्जा जमा लिया, जो हो सकता है अपने चरित्र में बिलकुल मनगढ़ंत हो। जिन लोगों को ये मौके पहले हासिल हो गए वही पूंजी की परिभाषा को गढ़ने लगे चाहे वे बाद में कदम रखने वाले लोगों से बेहतर हों या ना हों।

किसी भी समाज में पूंजी के वितरण की व्यवस्था सामाजिक असमानता की प्रणालियों को काफी हद तक प्रभावित करती रही है। मानवीय समुदायों में कुछ खास सामाजिक समूह पूंजी का संचय करते रहे और इसे अपने अनुगामियों को प्रेषित कर दिया गया। इससे हुआ ये कि नई पीढ़ी ने आते ही एक ऐसी दुनिया को देखा जहां पहले से ही पूंजी

के कुछ पहाड़ और कुछ खाइयां मौजूद थीं। कुछ लोग अनगिनत अवसरों के साथ पैदा हुए व कुछ का जन्म ऐसे परिवारों में हुआ जो कोल्हू के बैल की तरह जिंदगी की चक्की में पिस रहे थे। पूंजी न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामाजिक भिन्नता का आधार बन गई। इसके बंटवारे ने ऐसी सामाजिक संरचनाओं को जन्म दिया जिनकी वजह से बहुत से लोगों की क्षमताओं को नकार दिया गया जबकि वे भी उतने ही प्रतिभाशाली और परिश्रमी थे।

एक उदाहरण जो मैं हमेशा अपने आस-पास विभिन्न कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में देखता हूँ, वह है अंग्रेजी भाषा का। ये एक तरह की सांस्कृतिक पूंजी है जिसके होने से आपको समाज में कई फायदे हासिल होते हैं। जबकि इस पूंजी में ऐसी कोई अंदरूनी अच्छाई या गुण नहीं है जिससे कि इसे अपने आप में कोई खास दर्जा हासिल हो। अंग्रेजी भाषा की संरचना में ऐसा कुछ नहीं है कि यह अन्य भाषाओं जैसे हिन्दी, कन्नड़ या पंजाबी से अधिक खास हो। पर यह एक विशिष्ट भाषा बन गई, इसका सिर्फ इतना कारण है कि यह वह भाषा है जिसमें एक सदी पहले भारत के सबसे ताकतवर लोग बोलते और लिखते थे। जब स्कूल और कॉलेजों का विस्तार हुआ तो जो लोग काफी महत्वाकांक्षी थे वे भी इसी भाषा में बोलना चाहते थे। ऊंची हैसियत वाले लोगों की भाषा का दर्जा हासिल कर लेने के बाद अंग्रेजी सर्वाधिक मांग वाली भाषा बन गई और ऊपर से यह भी हो गया कि यह पूरी दुनिया में फैल गई तथा इससे आपको बातचीत का बहुत विस्तृत दायरा मिल गया। अंग्रेजी को पहले ही यह जो फायदा प्राप्त हो गया इसी से उसे एक सांस्कृतिक पूंजी का स्वरूप हासिल हुआ, अन्यथा इसमें स्वयं में कुछ भी अनूठा या खास नहीं था। सांस्कृतिक पूंजी को जिस तरह से देखा जाता है, उस स्वरूप में आ जाने के बाद यह अब दुनिया की अन्य सभी भाषाओं (और शिक्षा) को भी प्रभावित करने लगी है। इसके अधिक ताकतवर हो जाने से अन्य भाषाएं स्वतः ही कमजोर प्रस्थिति में धकेल दी गई हैं।

जिन्हें अंग्रेजी के रूप में एक सांस्कृतिक पूंजी हासिल हो गई है उन्हें कई ऐसे फायदे हासिल होते हैं जिनसे अन्य लोग वंचित रह जाते हैं। शुरू में एक छोटी ही संख्या थी जो अंग्रेजी बोलती थी। भारत में अब भी यह संख्या बहुत कम है। जो लोग अंग्रेजी बोलने वाले परिवारों में पले-बढ़े हैं या फिर जिनके पास इतना पैसा है कि वे अंग्रेजी सिखाने वाले स्कूलों में जा सकते हैं, उनके पास अन्य लोगों की तुलना में अधिक पूंजी होती है। सांस्कृतिक पूंजी के बंटवारे की व्यवस्था ऐसी सामाजिक असमानताओं को जन्म देती है जिसकी गूँज स्कूली जीवन से लेकर कॉलेज और फिर करीअर के पूरे सफर में सुनाई देती है।

बोर्डियु ने यह रेखांकित किया कि सांस्कृतिक पूंजी के लिए इसके अंदर कोई बहुत विशेष महत्वपूर्ण चीज होने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि जो इसे मूल्यवान बनाता है वह है इसका अपने क्षेत्र के अन्य सदस्यों से रिश्ता। यहां शक्ति का स्रोत यह प्रदर्शित कर सकने की काबिलियत में निहित होता है कि दूसरे कमतर हैं व यह अपने आप में ही श्रेष्ठ है। इससे कई सांस्कृतिक विशेषताओं, जिन्हें हम परिष्कृत या सुसंस्कृत मानते रहे हैं, के बारे में एक चौंकाने वाला दृष्टिकोण सामने आता है। हालांकि हर चीज जिसे हम अच्छी मानते हैं, केवल इसलिए अच्छी नहीं है कि इससे कुछ लोगों को खुद को दूसरों से श्रेष्ठ दिखाने का मौका मिलता है और उन्हें अपने क्षेत्र के अन्य लोगों को नियंत्रित करने की काबिलियत हासिल होती है। लेकिन कुछ सांस्कृतिक विशेषताएं जैसे स्कूल यूनिफॉर्म में कोट और टाई का होना, रोटी की बजाय पास्ता खाना, कुछ खास तरह की फिल्में देखना आदि आकर्षित करती हैं इसकी एक वजह यह है कि इनसे यह प्रदर्शित होता है कि इनको अपनाने वाले दूसरों से अलग व श्रेष्ठ हैं। अपनी बहुचर्चित किताब 'श्रेष्ठता : रुचि की धारणा की सामाजिक विवेचना' (डिस्टिंक्शन: अ सोशल क्रिटिक ऑफ जजमेंट ऑफ टेस्ट, 1988/1979) में बोर्डियु ने कई ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जिनसे यह पता लगता है कि फ्रांस के लोग सांस्कृतिक रुचियों से संबंधित कई छोटे-छोटे कामों के जरिए अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाने की कोशिश किया करते थे। एक खास रंग के मेजपोश का इस्तेमाल, कुछ खास तरह के खाद्य पदार्थों को खाना व अन्य को नहीं खाना, अपने ड्रॉइंग रूम

को खास तरह से सजाना आदि एक विशेष सामाजिक समूह की सदस्यता को प्रदर्शित करने का एक तरीका था जो कि अपने से नीचे के समूहों से श्रेष्ठ था। इस तरह के सांस्कृतिक कृत्यों से हो सकता है एक गहरा जुड़ाव हो और इनके साथ कुछ गाढ़े भावनात्मक अनुभव जुड़े हुए हों, लेकिन इस बात से किसी दूसरे रंग के मेजपोश का इस्तेमाल करना या कोई और तरह का खाना खाना कमतर नहीं हो जाता। जिसने इन्हें अलग किया वह है श्रेष्ठता या निम्नता स्थापित करने में इनका महत्व।

शिक्षा व सामाजिक असमानता का पुनरुत्पादन

सांस्कृतिक पूंजी के विचार व उससे संबंधित सामाजिक क्षेत्र के प्रभुत्व, इन दो चीजों की वजह से स्कूलों को एक अलग दृष्टि से देखा जाने लगा। स्कूली पाठ्यचर्या व कक्षा के रोजमर्रा के जीवन की सामान्य समझ ये थी कि ये बच्चों को एक बेहतर ज्ञान और मूल्यों की ओर लेकर जाती हैं। इसके विपरीत बहुत से लोग ये सोचते रहे कि स्कूल दरअसल अन्य मूल्यों की तुलना में कुछ सामाजिक समूहों के ज्ञान को तरजीह देते हैं। भारत में लम्बे समय से ये पूछा जाता रहा है कि क्या अंग्रेजी वाकई अन्य भाषाओं से किसी तरह बेहतर है और क्या स्कूल जीवन्त व व्यावहारिक ज्ञान के बजाय विज्ञान की किताबी समझ का कुछ ज्यादा ही बखान नहीं करते रहे हैं। बोर्डियु द्वारा प्रस्तुत की गई अवधारणाएं इस सब को समझने में हमारी मदद करती हैं।

बोर्डियु ने उस जमाने में फ्रांस में प्रचलित इस धारणा का पुरजोर विरोध किया कि स्कूल सामाजिक समानता स्थापित करने का एक साधारण और सुगम जरिया है। यह भारत में भी एक बहुप्रचलित धारणा रही है इसलिए जो उन्होंने कहा वह ऐसा है जिसकी तरफ हमें भी ध्यान देने की जरूरत है। उन्होंने जोर दिया कि सामाजिक समानता स्थापित करने की बजाय शिक्षा दरअसल सामाजिक असमानता का पुनरुत्पादन करने का काम करती है। उन्होंने कई सर्वेक्षण और साक्षात्कार किए और यह दर्शाया कि भारी संख्या में छात्र जो ऐसे कोर्स करने जाते थे जिनसे वे आगे चलकर फ्रांसीसी समाज में ऊंचा स्थान प्राप्त कर सकें, स्वयं भी समाज के ऊंचे तबके से आते थे। उन्होंने कहा कि उनके प्रमाण यह दर्शाते हैं कि शिक्षा सामाजिक समानता को जन्म नहीं दे रही थी, बल्कि यह सिर्फ अवसर प्रदान करने का एक भ्रम पैदा कर रही थी ताकि लोग निम्न स्तर में बने रहने की स्थिति से सामंजस्य बिठा सकें। पर यह दावा कि शिक्षा केवल असमानता का सामाजिक पुनरुत्पादन करती है, भारत जैसे देश के लिए पूरी तरह सही नहीं है क्योंकि यहां मध्यम व उच्च स्तर पर अवसरों की वृद्धि ने कई लोगों को इनमें प्रवेश पाने की इजाजत दी है। पर यहां भी कई लोग इस बात से चिंतित हैं कि शिक्षा उतना सब नहीं कर रही है जितनी इससे उम्मीद थी। ऐसा क्यों है, यह समझने में बोर्डियु हमारी मदद करते हैं।

बोर्डियु कहते थे कि उच्च स्तर के सामाजिक समूहों की संस्कृति का लगातार बना हुआ प्रभुत्व एक शक्तिशाली युक्ति थी जो निचले स्तर के सामाजिक समूहों के प्रवेश पर रोक लगाती थी। सांस्कृतिक शक्ति को इस तरह परिभाषित किया गया था कि उन सामाजिक समूहों को विशेषाधिकार प्राप्त हो सकें जो कि पहले से ही ताकतवर थे। अपनी किताब 'द इनहेरिटर्स : फ्रेंच स्टूडेंट्स इन रिलेशन टू देयर कल्चर' (1979/1964) में बोर्डियु रेखांकित करते हैं कि स्कूल और कॉलेजों के उस वक्त के वातावरण में अभिजात्य फ्रांसीसी संस्कृति का बहुत बोलबाला था। स्कूल केवल गणित और व्याकरण के तकनीकी ज्ञान तक सीमित नहीं थे। कुछ ऐसे सामान्य तौर-तरीके थे, जिनमें संगीत, नाटक व साहित्य इसमें भूमिका निभाते थे कि आप खुद को ज्ञानी या जानकार महसूस करते हैं या नहीं। मुख्य संग्रहालयों में नहीं जाने का मतलब था कि बच्चे में कोई कमी है व उसे जाहिल समझा जाए। इससे बच्चे का आत्मविश्वास गिरता जाता था और शिक्षक भी उसे कमतर व पिछड़ा हुआ मानने लगते थे। माता-पिता का ऐसा होना जो बच्चों को नियमित तौर पर कला फिल्में या नाटक देखने ले जाते, तो इससे छात्रों की बातचीत में एक अन्दाज आ जाता जो आधुनिक प्रतीत होता। ऐसे समूहों में जहां विज्ञान और साहित्य पर वैचारिक और परिष्कृत किस्म की बातचीत होती वहां बच्चे भी

उसी तरह से बात करना सीख जाते। इससे छात्रों को स्कूल में भी इस तरह की चर्चाएं करना आसान हो जाता। 'शिक्षा, समाज व संस्कृति में पुनरुत्पादन' (Reproduction in education society and culture : 1990/1970) में बोर्डियु और उनके सह-लेखक जीन क्लॉड पासेरान ने तर्क दिया कि इसका परिणाम यह हुआ कि एक व्यापक असमानता का पुनरुत्पादन हुआ, जबकि खुलेपन और स्वतंत्रता के मुखौटे को बनाए रखने की कोशिश जारी रही।

पूँजी के प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष स्वरूप

बोर्डियु मानते थे कि जिस तरह हम अपनी शिक्षा व्यवस्था को देखते हैं, वह इसी का एक हिस्सा है कि किस तरह समाज के शक्तिशाली समूह चाहते हैं कि हम दुनिया को देखें। केवल कड़ी मेहनत से सफलता प्राप्त करने का एक झूठा सपना हमें दिखाया गया जिससे कि उस अनुचित लाभ को छुपाया जा सके जो कि एक खास तरह की पूँजी से ऊंचे तबके के सामाजिक समूहों को प्राप्त होता है। आर्थिक पूँजी को पहचानना आसान था, इसके खिलाफ संघर्ष का एक लम्बा इतिहास था। जबकि शिक्षा में पूँजी के कुछ अलग स्वरूप थे, जिन्हें पहचानना मुश्किल था और बोर्डियु का मानना था कि उच्च वर्ग के लोगों को इससे अपने अनवरत प्रभुत्व पर पर्दा डाले रखने का एक सुविधाजनक रास्ता मिल गया। और उनके लिए यह कहना संभव हो गया कि सैन्य-शक्ति व आर्थिक ताकत के बलबूते निर्बाध नियंत्रण के पुराने तरीकों की जगह अब एक ऐसी व्यवस्था ने ले ली है जहां आपकी योग्यता बोलती है और ऊंचे पदों पर अपनी काबिलियत से पहुंचा जाता है, ना कि किसी के परिवार की आर्थिक पूँजी के जरिए। दरअसल अलग-अलग किस्म की पूँजी के मध्य परस्पर रूपांतरण हो रहा था और आर्थिक पूँजी ने रूप बदलकर स्वयं को सामाजिक व सांस्कृतिक पूँजी के रूप में पेश किया।

पैसा, जमीन, उपकरण आदि सभी को बोर्डियु ने 'ओब्जेक्टिफाइड' या 'अवैयक्तिक' पूँजी की संज्ञा दी। वे ऐसी चीजें थीं जो व्यक्ति के बाहर मौजूद हैं। इन्हें आसानी से देखा जा सकता था व गणना की जा सकती थी। इन्हें शक्तिशाली सामाजिक समूहों द्वारा अगली पीढ़ी को आसानी से हस्तांतरित किया जा सकता था ताकि सत्ता का पुनरुत्पादन किया जा सके। धनी लोग ऊंची स्कूल की फीस भर सकते थे, लैपटॉप दे सकते थे, किताबें खरीद सकते थे व ऑनलाइन पुस्तकालयों की सदस्यता हासिल कर सकते थे। शिक्षा व्यवस्था ने इन अवैयक्तिक पूँजी के स्वरूपों को छात्रों के शरीरों में विभिन्न ज्ञान व काबिलियतों के रूप में तब्दील कर दिया। यह अंगीभूत (एम्बाडीड) पूँजी उतनी प्रत्यक्ष नहीं थी व इसे एक व्यक्ति से दूसरे को देना उतना आसान भी नहीं था। इसे हासिल करने हेतु छात्रों की ओर से कुछ श्रम करने की जरूरत थी। दूसरी तरफ अंगीभूत पूँजी से ऐसा भी आभास हुआ कि इसका परिवार की आर्थिक पूँजी से कोई संबंध नहीं है। इस तथ्य को कि विरासत में प्राप्त बड़ी आर्थिक पूँजी का इस्तेमाल किसी व्यक्ति की अपनी काबिलियतों के निर्माण में किया गया है, शिक्षा व्यवस्था की व्यक्तिगत कर्म व व्यक्तिगत उपलब्धी की दलील से ढंक दिया गया। दरअसल व्यक्ति की अंगीभूत पूँजी के पीछे विरासत में प्राप्त कई तरह की पूँजी का हाथ था। ओब्जेक्टिफाइड या अवैयक्तिक पूँजी- परिवार का पैसा व संसाधन- के अलावा इसकी अपनी सांस्कृतिक पूँजी जिसमें खास तरह से बोलना व चीजों को देखना सिखाया गया। और फिर सामाजिक पूँजी थी यानी सामाजिक नेटवर्क जिसका कि संपन्न तबके से आने वाला व्यक्ति इस्तेमाल कर सकता था। एक बच्चा जिसके संबंधी व दोस्त कॉलेज में जाते थे, बहुत जल्दी सीखता था क्योंकि उससे भी वैसा ही करने की उम्मीद की जाती थी। अनुकरण करने के लिए उसके सामने कई आकर्षक रोल मॉडल होते। ऐसे लोग होते जो सलाह दे सकते हैं कि कौनसी किताबें पढ़नी हैं, परीक्षा से कैसे निबटना है और कहां जाकर पढ़ाई करनी है। इस तरह की सामाजिक पूँजी के अभाव में अक्सर बच्चा भटक सकता था।

एक अधिक लोकतांत्रिक समाज के अस्तित्व में आने के बाद ऐसी व्यवस्था ने आकार लिया जहां शक्ति का स्रोत किसी की धन-संपदा नहीं, बल्कि उसकी योग्यता हो गई। बोर्डियु का विश्वास था कि इस बदलाव के पीछे विभिन्न किस्म की पूँजी व उनके पारस्परिक रूपांतरण की एक अंधकारमय कहानी छिपी हुई है।

हैबिटस : संरचनाएं हमारी आवाज कैसे बनती हैं।

एक खास सामाजिक समूह के अनुभव बच्चों की मनोवृत्तियों व उनके काम के तरीकों को खास रंग में ढालने लगते हैं। बोर्डियु ने इसे एक विशिष्ट किस्म के 'हैबिटस' का निर्माण होना बताया, यानी एक गहरी मनोवृत्ति या रुझान जिसे हमने अपनाना शुरू कर दिया है। उदाहरण के लिए, ऐसे बच्चे जो बहुत सी असुरक्षा व तंगी के अनुभवों से गुजरे हैं, वे जो भी कुछ सबसे आसानी से उपलब्ध होगा उसे स्वीकार कर लेंगे, कहीं ऐसा ना हो कि यह तुरंत गायब हो जाए। इसके विपरीत जो बच्चे ज्यादा सुरक्षित हैं, वे कुछ अधिक जटिल विकल्पों की तरफ जाएंगे और थोड़ा इंतजार करना चाहेंगे व प्रतिफल की अपेक्षाओं को थोड़ा थाम लेंगे। फिल्म 'लगे रहो मुन्नाभाई' का एक लोकप्रिय दृश्य है जहां राजकुमार हीरानी ठीक यही दिखाते हैं। फिल्म के नायक मुन्नाभाई को गांधी के बारे में बहुत कुछ जानना है ताकि वह उन पर एक व्याख्यान दे सके और नायिका के सामने उसकी नाक ना कटे। वह हिम्मत जुटाता है और एक धिनौने से पुस्तकालय में घुस जाता है। कैमरा गांधी से जुड़ी हुई कई छोटी-बड़ी किताबों पर घूमता है, पर मुन्नाभाई क्या उठाता है? वहां मौजूद एक सबसे पतली पोथी। शिक्षक अक्सर सामाजिक रूप से वंचित समूहों से आने वाले कई छात्रों में ठीक इसी तरह का व्यवहार देख सकते हैं। वे कोई जोखिम नहीं उठाना चाहते और अपने प्रयासों के बदले तुरंत प्रतिफल चाहते हैं। एक भारी-भरकम किताब पढ़ने से उनके डर व आशंकाएं बढ़ जाती हैं। उन्हें लगता है कि जटिल बौद्धिक लक्ष्यों को साधने का मतलब है असफलता को सुनिश्चित करना। इसकी बजाय एक सुविधासंपन्न सामाजिक परिवेश से आने वाले छात्र अधिकतर मामलों में ऐसे सवालियों पर वक्त लगाना पसंद करते हैं जिनके कोई तत्काल जवाब मौजूद नहीं होते। जो व्यक्ति अधिक सुरक्षित है, वही किसी जटिल किताब से घंटों जूझना चाहेगा। नतीजा यह होता है कि जो बौद्धिक तौर पर कम महत्वाकांक्षी हैं, वे आवश्यक तौर पर उनकी तुलना में पिछड़ जाते हैं जो जटिल विचारों से जूझना ज्यादा पसंद करते हैं। बोर्डियु कहते थे कि इस तरह से सामाजिक असमानताओं ने हमारे जीवन में कदम रखा और हमारी सबसे गहरे विचारों को प्रभावित करना शुरू किया। इसने हमारे अंदर 'हैबिटस' का निर्माण किया जैसे एक गुप्त कम्प्यूटर प्रोग्राम या कोड। हमें पता ही नहीं चला और ये अचेतन तौर पर हमें ऐसी दिशा में खींचते चले गए जिससे सामाजिक असमानता का पुनरुत्पादन संभव हुआ। बोर्डियु के अनुसार इसी तरह सामाजिक संरचनाएं व्यक्तियों से जुड़ गईं। तो हो सकता है कि कोई प्रत्यक्ष नियंत्रण ना दिखाई दे, लेकिन विभिन्न किस्म की पूजियों के असमान वितरण से निर्मित 'हैबिटस' का ही नतीजा था कि सामाजिक असमानताओं का पुनरुत्पादन संभव हुआ।

बोर्डियु-एक पुनरावलोकन

पियरे बोर्डियु ने अपने काम में विभिन्न बौद्धिक स्रोतों से प्राप्त कड़ियों को एक साथ जोड़ दिया। यह मूल रूप में मार्क्सवादी विचार था जिसके आधार पर उन्होंने शिक्षा के जरिए असमानताओं के पुनरुत्पादन की बात कही। और हमें वेबर की प्रतिध्वनि सुनाई देती है, जब वे देखते हैं कि किस तरह से सामाजिक समूह अपने इर्द-गिर्द कुछ सांस्कृतिक चारदीवारी निर्मित कर लेते हैं व शिक्षा की सांस्कृतिक विषयवस्तु को प्रभावित करके एक-दूसरे से श्रेष्ठ दिखने की कोशिश करते हैं। वास्तव में वे इस बात में भरोसा जताते नजर आते हैं कि सामाजिक असमानता को समझने में हैसियत समूह का विचार विशेष महत्व रखता है। सांस्कृतिक समूहों का निर्माण चाहे किसी भी वजह से हो- आर्थिक, सामाजिक, या राजनैतिक- लेकिन यह सांस्कृतिक समूहों या हैसियत समूहों का ही परिणाम था कि असमानताएं उभरीं और रोजमर्रा के संघर्षों का हिस्सा बन गईं। बोर्डियु के काम ने शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर काम करने वाले बहुत लोगों को प्रेरित किया। नारीवादी विद्वानों के लेखन में देखा जा सकता है कि किस तरह पुरुषों की सांस्कृतिक पूंजी स्कूली संस्कृति पर हावी रहती है जहां लड़कियों को आत्म-रक्षात्मक स्थिति में रहना होता है। दलित विद्वान भी तर्क देते रहे हैं कि स्कूल का वातावरण ऐसा होता है कि निम्न जातियों से आने वाले बच्चे अलग-थलग महसूस करने लगते हैं। स्कूली व्यवस्था में प्रतीकात्मक हिंसा रही है ताकि अवसरों का भ्रम पैदा किया जा सके और लोगों को बहकाया जा सके कि वे शिक्षा का लाभ पाने के हकदार या योग्य नहीं हैं। मानो इसके लिए कोई और नहीं बल्कि वे स्वयं जिम्मेदार हैं।

बोर्डियु के काम की अपनी सीमाएं भी रही हैं। यह तर्क कि शिक्षा का काम सिर्फ सामाजिक असमानताओं का पुनरुत्पादन करना है, शिक्षा द्वारा प्रदत्त अवसरों की सरलीकृत व्याख्या के खिलाफ एक चेतावनी देता है। लेकिन इसे अक्षरशः नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि ऐसे और कई सामाजिक और व्यक्तिगत बदलाव भी हैं जिनका कि शिक्षा व्यवस्था एक हिस्सा है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि बोर्डियु व्यक्तिगत व सामूहिक स्वायत्तता को बहुत जगह नहीं देते और उनके लेखन में हम पूंजी के हाथों की कठपुतली मात्र दिखाई देते हैं। दरअसल जिंदगी में रोज कई संघर्ष होते हैं और लोग अपने व्यवहार, रवैये और मनोवृत्तियों को स्वयं रूपांतरित कर सकते हैं और वे करते हैं। हमें बोर्डियु को एहतियात से पढ़ना चाहिए और उनके विचारों को भारतीय शिक्षा की अपनी समझ के साथ सचेत ढंग से समायोजित करना चाहिए। ऐसा करने पर ही हम पाएंगे कि वे भारतीय शिक्षा की हमारी समझ व इसके साथ तालमेल स्थापित करने के हमारे तरीकों में काफी प्रभावशाली ढंग से योगदान दे सकते हैं। ◆

लेखक परिचय : जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बेंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

संपर्क : amman.madan@apu.edu.in

संदर्भ :

Bourdieu, Pierre, and Jean-Claude Passeron. (1964) 1979. *The Inheritors: French Students and Their Relation to Culture*. Translated by Richard Nice. Chicago and London: Chicago University Press.

Bourdieu, Pierre. (1979) 1984. *Distinction: A Social Critique of the Judgement of Taste*. Cambridge, MA: Harvard University Press.

Bourdieu, Pierre, and Jean-Claude Passeron. (1970) 1990. *Reproduction in Education, Society and Culture*. 2nd ed. London: Sage.

अतिरिक्त पठन सामग्री :

Bourdieu, Pierre. (1971) 2010. 'पूंजी के स्वरूप' : *Shiksha Vimarsh* 12 (2): 136-46.

Dalal, Jyoti. 2016. 'Pierre Bourdieu: The Sociologist of Education'. *Contemporary Education Dialogue* 13 (2): 231-50.